E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

रघुवंशम् के द्वितीय सर्ग का सारांश

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

रात में पर्णशाला के अन्दर विश्राम कर लेने के बाद प्रातःकाल प्रजापालक राजा दिलीप ने वसिष्ठजी की नवप्रसूता उस नन्दिनी गौ को वन में चराने के लिए बन्धन से खोल दिया, जिसकी पूजा रानी सुदक्षिणा ने चन्दन एवं माला से कर दी थी और दूध पी चुकने के बाद जिसका बछड़ा बाँध दिया गया था। पतिव्रताओं में अग्रगण्य दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा ने नन्दिनी के खुरों के रखने से पवित्र धूलि वाले मार्ग का उसी प्रकार अनुगमन किया जैसे स्मृति श्रुति का अनुगमन करती है। दयालु राजा दिलीप सुकुमारी सुदक्षिणा एवं नौकरों को वापस लौटाकर दूध भरे स्तनों के भार से धीरे-धीरे चलने वाली नन्दिनी की सेवा स्वयं करने लगे।

राजा नन्दिनी के इच्छानुसार रुकने पर रुकते थे, चलने पर चलते थे, बैठने पर बैठते थे, पानी पीने पर पानी पीते थे इस प्रकार उन्होंने छाया की भाँति उस नन्दिनी का अनुसरण किया। छत्र, चामर, मुकुट आदि राजचिह्नों से रहित होने पर भी वे अपने असाधारण तेज से राजा प्रतीत होते थे और प्रत्यक्षा चढ़े हुए धनुष को लिये वसिष्ठ जी की होमधेनु नन्दिनी की रक्षा के बहाने दुष्ट जङ्गली जानवरों को मानों दण्ड देने के लिए वन में घूम रहे थे। बगल के वृक्षों ने मतवाले पक्षियों के शब्दों से उनका जयकार किया, लताओं ने उनके ऊपर फूल बिखेरा, हरिणों ने निडर होकर उन्हें देखते हुए अपने विशाल नेत्र का फल पा लिया। मन्द, सुगन्ध एवं शीतल वायु ने उनकी सेवा की और उनके वन में प्रवेश करते ही वनाग्नि शान्त हो गयी।

शाम हो जाने पर नन्दिनी अपने संचार से वनभूमि को पवित्र कर आश्रम पर जाने लगी और दिलीप भी वन का दृश्य देखते हुए उसके पीछे-पीछे चले। आश्रम के पास पीछे राजा, मध्य में नन्दिनी और आगे अगवानी करने आई हुई सुदक्षिणा हो गयी। इस प्रकार दिलीप सुदक्षिणा के बीच नन्दिनी

की शोभा रात-दिन के मध्य में वर्तमान सन्ध्या के समान हो गयी। सुदक्षिणा ने नन्दिनी की पुनः पूजा की। बछड़े के लिए उत्कण्ठित होने पर भी उसने उसे स्वीकार कर लिया। अतः वे दोनों बड़े प्रसन्न हुए। गुरु एवं गुरुपत्नी को प्रणाम कर सन्ध्या विधि के समाप्त होने पर दिलीप दूध दूह लेने के बाद बैठी नन्दिनी की पुनः सेवा करने लगे। नन्दिनी के पास दीपक तथा उसके भोज्य पदार्थ रखे हुए थे, उसके सो जाने पर राजा और सुदक्षिणा भी सो जाते थे और जगने पर जग जाते थे। इस प्रकार पत्नी के साथ नन्दिनी की सेवा करते हुए दिलीप के इक्कीस दिन बीत गये।

बाइसवें दिन जब राजा पर्वतीय दृश्य देखने लगे तो नन्दिनी भी राजा के हृदय को जानने के लिए हिमालय की कन्दरा में घुस गयी और शेर ने उस पर आक्रमण कर दिया। उसका करुण क्रन्दन सुनकर अन्दर जाने पर राजा ने देखा कि उसके ऊपर शेर बैठा है और नन्दिनी कातर होकर उनकी ओर देख रही है। यह देखते ही राजा ने शेर को मारने के लिए तरकस से बाण निकालकर उस पर प्रहार करना ही चाहा कि उनका हाथ रुक गया और वे चित्रलिखित से निस्तब्ध हो गये। बाद में अपने पुरुषार्थ को व्यर्थ समझ कर आश्चर्य में पड़े हुए और मन्त्र एवं औषधि के बल से शक्तिक्षीण साँप के समान भीतर ही भीतर छटपटाते हुए राजा को देखकर मनुष्य की वाणी में शेर ने हँसते हुए कहा राजन्! मुझे मारने के लिए तेरा प्रयास व्यर्थ है, मैं भगवान शङ्कर का सेवक हूँ, जो तुम्हारे भी मान्य हैं। एक बार जंगली हाथियों ने इन देवदारुवृक्षों के वल्कल को खुजली शान्त करने के लिए अपने कपोलस्थल की रगड़ से छुड़ा दिया था, जिसे देखकर पार्वती जी को बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उन्होंने उन्हें अपने पुत्र के समान पाला था। उसी समय से शिवजी ने मुझे इसकी रखवाली के लिए नियुक्त कर आदेश दिया कि जो जन्तु तुम्हारे समीप आ जाय, उसे खाकर तुम अपना निर्वाह करना। अतः मैं इसे खाऊँगा। तुम लज्जा छोड़कर लौट जाओ, तुमने गुरु भक्ति का प्रदर्शन कर दिया। जो कार्य अशक्य है उसमें किसी का दोष नहीं। यह सुनकर राजा ने अपनी अपमान-भावना को ढीला कर दिया और कहा हे मृगेन्द्र! शिवजी तो मेरे मान्य हैं ही, पर गुरु की यह गाय भी उपेक्षणीय नहीं है, इसका छोटा बछड़ा दूध पीने के लिए उत्सुक होगा। अतः आप मुझे खाकर अपनी क्षुधा की निवृत्ति कीजिए और इसे छोड़ दीजिए।

यह सुनकर शेर ने मुस्करा कर दिलीप से पुनः कहा- राजन्! तुम मेरे विचार से बड़े विवेकशून्य मालूम पड़ते हो, क्योंकि एक क्षुद्र गौ के लिए इतना बड़ा साम्राज्य, नयी अवस्था एवं सुन्दर शरीर का त्याग करना चाहते हो। तुम्हारी कृपा से एक नन्दिनी मात्र का कल्याण होगा, यदि तुम जीते रहोगे तो अनेक प्रजाओं का पिता के समान निरन्तर पालन करते रहोगे। यदि गुरु से डरते हो तो अधिक दूध देने वाली अनेक गौओं को देकर उनका क्रोध शान्त कर सकते हो। अतः अपने शरीर का त्याग न करो। इस पार्थिव स्वर्ग का भोग भोगो। यह कहकर सिंह के मौन हो जाने पर दिलीप ने कहा- मृगराज! नाश से रक्षा करना क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य है, उसके विरुद्ध प्राणधारण से क्या लाभ है? गुरु जी के क्रोध की शान्ति अन्य गायों के दान से सम्भव नहीं। इस नन्दिनी को कामधेनु के समान समझो। इस पर तो तुम्हारा आक्रमण शिवजी के प्रताप से हुआ है। अतः मैं इस गौ के बदले में अपने शरीर को तुम्हें देकर इसकी रक्षा करना आवश्यक समझता हूँ। इस प्रकार तुम्हारी भूख भी मिट जायेगी और गुरुजी का होम कार्य भी चलता रहेगा। आप स्वयं पराधीन हो, पराधीनों की बात जानते ही हो। रक्षणीय वस्तु को नष्टकर सेवक स्वयं कुछ भी आघात न पाकर स्वामी के सामने संकोच के मारे जा नहीं सकता। मुझ पर दया करो, मुझे प्राण का मोह नहीं है, क्योंकि मेरे जैसे यशस्वी व्यक्ति को इस अवश्य विनाशशील शरीर पर आस्था नहीं रहती। अपना शरीर समर्पित कर गौ की रक्षा करना परम धर्म है। यही मैं चाहता हूँ। विद्वान् कहते हैं-बातचीत से भी मित्रता हो जाती है। इस प्रकार हम दोनों में मित्रता हो चुकी। अतः मित्र होकर तुम मेरी प्रार्थना भंग न करो। यह सुन शेर को स्वीकार कर लेने के बाद राजा का बाहुस्तम्भ शिथिल हो गया, उन्होंने अस्त्र त्याग कर अपने शरीर को मांसपिण्ड के समान शेर के सामने भेंट कर किया। नीचे मुख किये सिंह के भयंकर आक्रमण की प्रतीक्षा करते हुए दिलीप के ऊपर आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी और नन्दिनी बोल उठी-'पुत्र! उठो'। नन्दिनी के इस अमृतमय वचन को सुनकर उठने पर राजा ने केवल दयालु माता के समान नन्दिनी को देखा पर शेर को नहीं देखा। इससे उनको बढ़ा आश्चर्य हुआ। तब उस विस्मयापन्न राजा से नन्दिनी ने कहा- वत्स! ऋषि के प्रभाव से मेरा यमराज भी कुछ नहीं कर सकते हैं, तो दूसरे जन्तुओं की क्या बात है? मैंने तो माया से शेर बनकर तुम्हारी परीक्षा ली है। तेरी गुरुभक्ति और जीवदया से मैं प्रसन्न हूँ। वर

माँगों, क्या चाहते हो? मुझे केवल दूध देने वाली गौ न समझो, अपितु प्रसन्न कामधेनु समझो। यह सुन राजा ने हाथ जोड़कर सुदक्षिणा में वंश को चलाने वाला पुत्र माँगा। नन्दिनी ने 'तथास्तु' कह कर वरदान दे दिया और पत्ते के दोने में दूध दूहकर पीने के लिये आदेश भी दे दिया, किन्तु राजा ने कहा- माँ, बछड़े के पीने और गुरुजी होम के बाद मैं दूध पीऊँगा। बाद में प्रसन्न हुई गौ के साथ कन्दरा से निकलकर राजा ने आश्रम पर पहुँच कर यह वृत वसिष्ठजी से निवेदन किया और बड़ी प्रसन्नता से अपनी पत्नी सुदक्षिणा से भी कह सुनाया। यद्यपि राजा की प्रसन्नता से उसका आभास उन्हें हो चुका था, बाद में गुरुजी की आशा से बछड़े और हवन से बचे हुए दूध का पान किया। दूसरे दिन गोव्रत की पारणा के बाद गुरु से आशीर्वाद ले और गुरु, गुरुपत्नी तथा वत्स सहित नन्दिनी की प्रदक्षिणा करके उन्होंने सुदक्षिणा के साथ रथ से अपनी राजधानी को प्रस्थान किया। अयोध्या पहुँचने पर प्रजाओं ने बड़ी उत्कण्ठा से उनका स्वागत किया। बाद में मन्त्रियों से राज्यभार लेकर वे धर्मपूर्वक प्रजा पालन करने लगे। अनन्तर, जिस प्रकार आकाशस्थली अत्रि मुनि के नेत्र से निर्गत चन्द्रमा को धारण करती है और देवनदी गङ्गा ने अग्नि से प्रक्षिप्त स्कन्द को उत्पन्न करने वाले शिवजी के तेज को धारण किया था, उसी प्रकार सुदक्षिणा ने दिलीप के वंशवर्द्धक गर्भ को धारण किया, जिसमें लोकपालों का अंश भी सम्मिलित था।